International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 1; January 2016; Page No. 41-44

अम्बेडकर : चिंतन और साहित्य

बीना देवी

अस्सिटेंट लेक्चरर, द्रोणाचार्य राजकीय महाविद्यालय, गुड़ंगाव, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

सृष्टि की प्रकृति बड़ी विविधतामयी है, जिसके समक्ष अच्छे से अच्छे विद्वान निरूत्तर हो जाते हैं, परंतु सृष्टि की प्रकृति में कुछ विविधता मानव ने स्वयं निर्मित की है। इनमें से सर्वाधिक चौंकानेवाला तथ्य है – मानव – मानव में परस्पर जाति, वंश, धर्म और कहीं – कहीं रंग के आधार पर भेद भाव। समय–समय पर अनेक जातियों ने आक्रमण कर यहाँ की मूल जाति को परास्त किया और यहीं बस गई। विजयी जातियों ने यहाँ की पराजित जातियों को धन–सम्पत्तिहीन कर उन्हें गुलाम बना लिया। यहाँ की शुद्र जातियाँ ही आज का दलित वर्ग है।

आज चेतना के क्षेत्र में दलित – चेतना का मुद्दा सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा बनकर उभरा है। इस दलित चेतन का संबंध मोटे रूप से शिक्षा के प्रचार–प्रसार, आधुनिक मूल्यों के फलस्वरूप परिवर्तित सामाजिक एवं सवैंधानिक मान्यताओं, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक संरचनाओं से दलित–चेतना में धार्मिक जीवन की विकृतियों के विरूद्ध मानव की प्रतिष्ठा निहित है। दलित चेतना के केन्द्र में दलित–समस्या एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में है। इसके केन्द्र में वे सारे सवाल है जिनका संबंध भेदभाव से है, चाहे यह भेदभाव जाति आधार पर हो, रंग के आधार पर हो, नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो या फिर धर्म के आधार पर क्यों न हो।

आधुनिक दलित–चेतना का मूलाधार बुद्ध –ज्योतिबा फूले और अंबेडकर के विचार हैं। इन्होंने परंपरागत धर्म और समाज की खामियों को जगजाहिर किया और दलित वर्ग की जातियों की दीन–हीन दशा का कारण स्वार्थी लोगों द्वारा धर्म और समाज की गलत व्याख्या को बताया। इससे दलित वर्ग में अपनी दीन–हीन दशा से उभरने की चेतना जाग्रत हुई। सामाजिक परिवर्तनार्थ अंबेडकर के विचार "शिक्षित बनो, संगठित जाओ और संघर्ष करो"। दलित चेतना समानता और समता का ही नहीं बल्कि सम्मान तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की आग्रही है। इसके स्वर है वेदना, विद्रोह और परिवर्तन। डा० तेजसिंह के शब्दों में "दलित समाज के लोगों की आशाओं, आकांक्षाओं और दुख–दर्द की यर्थाथ अभिव्यक्ति के साथ–साथ सामाजिक आर्थिक विषमताओं से मुक्ति, शोषण, उत्पीड़न के विरूद्ध विद्रोह की चेतना, आत्मसम्मान से जीने की प्रबल इच्छाशक्ति तथा एकजुट होकर अपनी अस्मिता के पहचान के लिए संघर्ष का चेतना जाग्रत करने दलित चेतना है, यानी यह अंबेडकरवादी चेतना है।"[1]

दलितों के लेखन पर डॉ० बी० आर० अम्बेडकर के प्रभाव की चर्चा प्रायः होती रही है और दलित साहित्यकोरों का तो यह दावा ही रहा है कि उनका लेखन अम्बेडकरवाद से अपनी प्रेरणा ग्रहण करता है, पर गैर–दलितों के लेखन पर डा० बी० आर० अम्बेडकर के आंदोलन के प्रभाव की चर्चा बहुत ही कम हुई है। अगर किसी पर हुई है तो वह है मुंशी प्रेमचंद।

आधुनिक भारत में अम्बेडकरवादी आंदोलन का आंरभ वर्ष 1920 के आसपास होता है। यह वही समय है जब डॉ० बी० आर० अम्बेडकर के संपादन एवं देखरेख में वर्ष 1917 में 'मूकनायक' और वर्ष 1927 में 'बहिष्कृत भारत' नामक पत्र निकला जिसके माध्यम से उन्होंने दलितों एवम् देश की स्थिति के विषय में अपने महत्वपूर्ण विचार प्रकट किया। वर्ष 1927 में ही 'महाड़ सत्याग्रह' और वर्ष 1930 में कालाराम मंदिर प्रवेश के आंदोलन का नेतृत्व किया। वर्ष 1927 में लंदन में आयोजित पहली राऊंड टेबल कांफ्रेस में अछूतों के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। पुनः 1931 में ही आयोजित दूसरे राऊंड टेबुल कांफ्रेस में दलितों के प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी के साथ भाग लिया। अंबेडकर के प्रयासो से ही ब्रिटिश संसद ने अल्पसंख्यक समुदायों के विशेषाधिकारों से संबंधित एक बिल पास किया जिसमें ब्रिटिश सरकार ने अछूतों को भी अल्पसंख्यक समुदाय का दर्जा प्रदान किया और उनके लिए प्रांतीय एवं केन्द्रीय विधायिकाओं में अलग से प्रतिनिधित्व की व्यवसथा की जिसे 'सेपरेट सेटिलमेंट' के नाम से जाना गया। महात्मा गांधी द्वारा दलितों के इस विशेषाधिकार का कड़ा विरोध किया गया। यहाँ तक कि गांधी जी इसके विरोध में आमरण अनशन पर चले गए। परिणामतः डॉ० बी० आर० अम्बेडकर को यह अधिकार गांधी जी के जीवन की एवज में छोड़ना पड़ा और गांधी जी के साथ वर्ष 1939 में उन्हें 'पूना पैक्ट' नामक समझौता करने को बाध्य होना पड़ा। स्वतंत्रता आंदोलन के पूर्व यही कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं थी जिनका संबंध दलित आंदोलन से था।

आरम्भ में डॉ० बी० आर० अम्बेडकर का मत था कि छुआछूत की समस्या हिंदू धर्म की समस्या है। इसलिए इस धर्म में सुधार के माध्यम से उसे समाप्त किया जा सकता है। पर वर्ष 1932 तक आते–आते उनका यह भ्रम टूट गया। अपने संघर्षों के दौरान उन्होंने पाया कि छुआछूत का व्यवहार अशिक्षित हिंदुओं के द्वारा ही नहीं बल्कि शिक्षित हिन्दुओं के द्वारा भी किया जाता है। समाज में इसकी जड़ बहुत गहरी है। हिंदू लोग समाज के कुछ लोगों के साथ छुआछूत का व्यवहार इसलिए नहीं करते कि वे लोग साफ सुथरा नहीं रहते, बल्कि ऐसा करते हुए वे अपने धर्म का पालन करते है। इसीलिए डॉ० बी० आर० अम्बेडकर वर्ष 1931 के राउंड टेबुल कान्फ्रेंस में दलितों के लिए 'पृथक प्रतिनिधित्व' की मांग की। इसके अलावा जो उनका दूसरा महत्वपूर्ण विचार था, वह यह था कि अछूतों के लिए राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न तब तक कोई मायने नहीं रखता जब तक कि उनकी सामाजिक मुक्ति का प्रश्न हल नहीं होता। उनके अनुसार, अछूतों के लिए बहुसंख्यक हिंदुओं की गुलामी अंग्रेजों की गुलामी से अधिक घातक थी। इसलिए स्वतंत्रता आंदोलन के संदर्भ में डॉ० बी० आर० अम्बेडकर का विचार था कि साम्राज्यवादी गुलामी के साथ–साथ सामाजिक गुलामी के विरूद्ध भी लड़ाई लड़ी जानी चाहि, जिस तरह माओत्सें तुंग ने चीन में लड़ा था। ध्यात्व हो कि चीन में माओत्सेतुंग ने साम्राज्यवाद और सामंतवाद के विरूद्ध एक ही साथ लड़ा था। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के संदर्भ में डॉ० बी० आर० अम्बेडकर का वैसा ही भय था जैसा कि कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद का। यह सर्वविदित है कि राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के संदर्भ में मुंशी प्रेमचंद का विचार था कि

अंग्रेजों के जाने के बाद देश में कोई परिवर्तन नहीं होने वाला है। सिर्फ इतना कि 'जॉन की जगह पर गोबिन्द आ जाएंगे'।

स्वतंत्रता आंदोलन से पूर्व अम्बेडकरवादी आंदोलन और उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि के बाद अन्य दो गैर–दलित आंदोलन और उसकी पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है। गैर–दलित आंदोलन और उसकी विचाराधारा के रूप में मुख्यतः दो आंदोलन और विचारधारा का उल्लेख किया जा सकता है। मार्क्सवादी और गांधीवादी। स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व कांग्रेस के हाथों में था और कांग्रेस का नेतृत्व गांधी जी कर रहे थे, जिसका मुख्य उद्देश्य था साम्राज्यवादी सत्ता से देश की जनता की मुक्ति। सामाजिक आंदोलन से उसका कोई सरोकार नहीं था। इस देश में सामाजिक आंदोलन से तात्पर्य था वर्णाश्रम व्यवस्था के विरूद्ध आंदोलन। अर्थात् जातिवाद और सामंतवाद दोनों से मुक्ति का आंदोलन। इससे कांग्रेस बहुत दूर खड़ी थी। कांग्रेस के आठवें अधिवेशन में जो इलाहाबाद में संपन्न हुआ था उसमें इस विषय पर चर्चा चली कि राजनैतिक आंदोलन के साथ–साथ सामाजिक आंदोलन भी चलाया जाए। इस प्रक्रिया में इस बात पर भी बहस हुई कि किस को प्राथमिकता के स्तर पर लिया जाए राजनैतिक आंदोलन को या सामाजिक आंदोलन को। कुछ लोगों का मत था कि राजनैतिक आंदोलन की सफलता के लिए सामाजिक आंदोलन जरूरी है। इसलिए इसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए डब्ल्यू० सी० बनर्जी के इसका कड़ा प्रतिरोध किया और कहा कि – 'राजनैतिक आंदोलन से सामाजिक आंदोलन का कोई सीधा संबंध नहीं'। उनके कहने का आशय यह था कि राजनैतिक आंदोलन अपनी जगह और सामाजिक आंदोलन अपनी जगह। इस तरह उन्होंने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के लिए सामाजिक मुक्ति के प्रश्न को पीछे धकेल दिया और अंत तक अर्थात् आजादी मिलने तक कांग्रेस की यही नीति बनी रही। कांग्रेस का यह दृष्टिकोण डॉ० बी० आर० अम्बेडकर के दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न था। बाद में डॉ० अम्बेडकर के आंदोलन के दबाव में कांग्रेस सामाजिक प्रश्नों को थोड़ा बहुत महत्व देने लगी थी। पर वर्ष 1932 तक तो बिल्कुल ही नहीं। जिसका उल्लेख प्रो० नामवर सिंह एक जगह मुंशी प्रेमचंद के संदर्भ में चर्चा करते हुए किया है – "रंगभूमि की समस्या राष्ट्रीय मुक्ति की है। इस राष्ट्रीय मुक्ति में प्रेमचंद दलितों का जो रूप सामने रखते हैं और ये 1924 में लिखा हुआ उपन्यास है और 1925 में छपा था। तब तक हमारे राष्टठीय आंदोलन के प्रोग्राम में दलित कहीं नहीं थे। असहयोग आंदोलन दलितों का आंदोलन नहीं था। चौरा–चौरी घटना दलितों को लेकर नहीं हुई थी। हमारे राष्ट्रीय आंदोलन में तब तक केंद्र में दलित आंदोलन नहीं आ सका था, बावजूद इसके कि एक अरसे से बाबा साहब अपनी लड़ाई लड़ रहे थे। लेकिन वह राष्ट्रीय आंदोलन और कांग्रेस का हिस्सा नहीं बन सका था। यह सच्चाई है।" प्रो० नामवर सिंह आगे अपने लेख में यह सीमा 1932 तक निर्धारित करते हैं।

भारत में वर्ष 1925 में कम्युनिस्ट पार्टियों की स्थापना हुई। साम्राज्यवाद विरोध में कम्युनिस्ट पार्टी शामिल रही। इन कम्युनिस्ट पार्टियों ने भी डॉ० बी० आर० अम्बेडकर के आंदोलन को महत्व नहीं दिया। गैर कम्युनिस्ट पार्टियों की तरह तत्कालीन कम्युनिस्टों के लिए भी डॉ० बी० आर० अम्बडेकर साम्राज्यवादी दलाल थे। कांग्रेस की ही तरह कम्युनिस्ट पार्टियों के एजेण्डे में सामाजिक आंदोलन नहीं था। इस देश में कम्युनिस्ट पार्टी का कई बार विभाजन हुआ, पर कभी भी दलित मुद्दे अर्थात वर्णाश्रम व्यवस्था के मुद्दे पर नहीं हुआ। तत्कालीन समय में गांधीवाद के बाद साम्यवाद ही दूसरी मुख्य विचारधारा थी जिसका राजनीति के क्षेत्र में महत्व तो था ही, इसने साहित्य पर भी अपना प्रभाव छोड़ा। वर्ष 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। उसके बाद बड़े पैमाने पर साहित्य का सृजन मार्क्सवादी विचारधारा के पैटर्न पर आरंभ हुआ। इस विचारधारा के आधार पर जनता को दो वर्गों में घटाकर (Reduce) देखा गया और उसी के अनुरूप रचना में नायक और नायिकाओं का सृजन और उनके महत्व भी प्रदान किया जाने लगा। इतना ही नहीं इस विचारधारा के आधार पर रचना के मूल्यांकन का प्रतिमान भी निर्धारित किया गया। इसी तरह गांधीवादी विचारधारा के अनुरूप रचना में आदर्शवादी चरित्रों का निर्माण किया गया और निम्न वर्ग से आने वाले चरित्रों को दीन–हीन दिखाकर उन्हें दया और करूणा का पात्र बना दिया गया। यहाँ भी रचना का मूल्यांकन आदर्शवादी मूल्यों के प्रतिमानों पर किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व मुख्यतः तीन गैर–दलित रचनाकारों ने दलितों के जीवन को अपनी रचना का विषय बनाया। मुंशी प्रेमचंद, बेचन शर्मा 'उग्र' और महापंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'। मुंशी प्रेमचंद अपनी कहानियों एवम् उपन्यासों में दलितों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया। उनके विरूद्ध हो रहे अन्याय और शोषण उजागर किया। ताकि लोग दलितों की दयनीय स्थिति के विषय में सोचें। इसी बहाने उन्होनें यह भी दिखाने का प्रयास किया कि वर्तमान समाज व्यवस्था कितनी क्रूर और प्रतिगामी है। उद्देश्य यह कि लोग इस व्यवस्था से घृणा करें और इसके अंत के लिए सोचें। महापंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'चतुरी चमार' नाम से कहानी एवम् 'दलित जन पर करो करूणा' नाम से कविता लिखकर दलितों के प्रति अपनी सहानुभूमि प्रकट की। इसी तरह बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने उपन्यास 'बुधुवा की बेटी' में दलित समाज के जीवन को केन्द्र में रखकर कथानक का निर्माण किया और उसे अपने ढंग से विकसित किया। इन उपरोक्त लेखकों की रचनाएं अम्बेडकरवादी आंदोलन से प्रभावित थी ऐसा तो बिल्कुल ही नहीं कहा जा सकता। दलित आंदोलन से उनका दूर–दूर तक नाता नहीं था। इन रचनाओं के कथानकों से कहीं भी इस बात का संकेत नहीं मिलता कि दलित आंदोलन का दर्शन क्या था ? उसका उद्देश्य क्या था ? उसके अस्तित्व के आधार क्या थे ? उसकी ऐतिहासिकता क्या थी ? और उसके राजनैतिक और सामाजिक सरोकार क्या थे ? या इन रचनाओं का कोई भी पात्र अम्बेडकर की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता हुआ नहीं दिखता। इसलिए तत्कालीन साहित्यिक रचनाओं में दलित दृष्टिकोण की झलक कहीं से नहीं मिलती। इन रचनाओं के संदर्भ में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि डॉ० अम्बेडकर के आंदोलन ने इनके लेखकों का ध्यान दलितों के जीवन के प्रति खींचा। वह भी प्रत्यक्ष रूप से नहीं, बलिक अप्रत्यक्ष रूप से ही, क्योंकि ये सब चीजें गांधीवाद से होकर आ रही थीं इससे अधिक कुछ नहीं। इस संदर्भ में दूसरी महत्वपूर्ण यह बात कही जा सकती है कि जहां कांग्रेस के राजनैतिक आंदोलन में दलित आंदोलन के रूप में सामाजिक आंदोलन का प्रश्न अनसूना कर दिया गया वहीं साहित्य में यह प्रश्न साथ–साथ चला जिसकी अगुवाई मुंशी प्रेमचंद ने की। आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद पहले गैर–दलित साहित्यकार है जिन्होंने दलितों के जीवन को अपनी रचना का विषय बनाया। सौभाग्य से मुंशी प्रेमचंद पहले ऐसे गैर–दलित कथाकार भी हैं जिन्होंने रचना को सामज के प्रति आग्रही बनाया। उन्होंने स्पष्ट रूप से साहित्य के सामाजिक उद्देश्यों को निर्धारित किया और बड़े ही शक्तिशाली ढंग से उसकी वकालत भी कीं चूंकि उनका रचनाकर्म उद्देश्यगत था, इसलिए वह सचेतन और योजनाबद्ध तरीके से संपन्न भी किया गया। लिहाजा उनके लेखन के संदर्भ में यह कहना मुश्किल होगा कि उनकी रचनाओं में समाज के विभिन्न वर्गों की उपस्थिति मात्र प्रसंगवश है। उन्हीं के समकालीन दलित समाज से आने वाले हीरोडोम और स्वामी अछूतानंद भी अपनी टूटी फूटी भाषा में अपने समाज के दुख–दर्द की स्वाभाविक अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में रख रहे थे जिसे आज के दलित साहित्य आंदोलन के आरंभिक कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। इन दोनों ही धाराओं

की रचनाओं में सामाजिकता का आग्रह प्रबल था। इसलिए यह कितनी महत्वपूर्ण बात है कि जहां कांग्रेस ने स्वतंत्रता आंदोलन के समय सामाजिक प्रश्नों को पीछे धकेल दिया वहीं मुंशी प्रेमचंद ने आजादी के प्रश्नों को महत्व देते हुए भी सामाजिक प्रश्नों को अपनी रचना के केन्द्र में रखा। अर्थात् बहुत हद तक सामंतवाद और कुछ हद तक जातिवाद को। यहाँ मुंशी प्रेमचंद ने अपनी इस बात को – 'साहित्य, राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है, सही सिद्ध किया। पर सामाजिक समस्याओं के निदान और उसके आंदोलन के संदर्भ में मुंशी प्रेमचंद का जो दृष्टिकोण था वह दलित आंदोलन के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न था। इस संदर्भ में यह नहीं कहा जा सकता कि उन पर डॉ० बी० आर० अम्बेडकर के आंदोलन का प्रभाव था। इसलिए यहाँ मात्र इतना ही दिखाना था कि तत्कालीन राजनैतिक आंदोलन जिन महत्वपूर्ण प्रश्नों को छोड़ रहा था साहित्य उन प्रश्नों को बराबर महत्व दे रहा था। जैसा कि स्पष्ट है कि स्वतंत्रता आंदोलन के पूर्व का गैर–दलितों का दलित लेखन बहुत कम है और जो है उस पर डॉ० बी० आर० अम्बडेकर के आंदोलन का प्रभाव न के बराबर है। इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं, पर इस संदर्भ में एक बात कही जा सकती है कि, चूंकि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गैर दलितों के लिए राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न प्रमुख था और दलितों की सामाजिक मुक्ति का प्रश्न गौण। इसलिए स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गैर–दलितों का ध्यान दलित समस्या की ओर न जाना स्वभाविक है और दूसरी तरफ तत्कालीन दलित आंदोलन भी व्यापक नहीं था। लेकिन आजादी के बाद के दलित आंदोलन के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्वतंत्रता के बाद का दलित आंदोलन अपनी व्यापकता प्राप्त कर चुका था जिसमें निम्न घटानाओं का महत्वपूर्ण योगदान था।

1. डॉ० बी० आर० अम्बेडकर का संविधान सभा में जाना।
2. 'राज्य और अल्पसंख्यक' नाम से एक स्वतंत्र वैकल्पिक संविधान प्रस्तुत करना जिसमें दलितों को अल्पसंख्यक समुदाय मानना और 'राज्य समाजवाद' की वकालत करनां
3. डॉ० बी० आर० अम्बेडकर का कानून मंत्री बनना और हिंदू कोड बिल पर अपना त्याग पत्र देना। यह विधेयक भारत में स्त्रियों के अधिकारों से संबंधित महत्वपूर्ण क्रांतिकारी विधेयक था।
4. वर्ष 1956 में डॉ० बी० आर० अम्बेडकर का लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म ग्रहण करना।
5. वर्ष 1960 में मराठी में दलित साहित्य का अविर्भाव
6. वर्ष 1978 में कांशीराम द्वारा बामसेफ की स्थापना, फिर डी. एस. फोर की स्थापना।
7. साठ के दशक में रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना
8. वर्ष 19884 में उत्तर भारत में बहुजन समाज पार्टी की स्थापना

स्वतंत्रता के बाद के दलित आंदोलन से संबंधित यही वे महत्वपूर्ण घटनाएं हैं जिनके माध्यम से दलित आंदोलन का स्वरूप और उसकी विचारधारा मुखरित हुई। वर्ष 1949 में संविधान सभा का निर्माण हुआ जिसमें डॉ० अम्बेडकर को केन्द्रीय भूमिका सौंपी गई। यद्यपि वे संविधान निर्माण में शिल्पी की भूमिका में थे। लेकिन यह उनके सपनों का संविधान नहीं था। कई कारणों से वे इसे अपने सपनों का संविधान नहीं बना सके। परिणामतः उन्होंने अनुसूचित जाति फेडरेशन की तरफ से एक वैकल्पिक संविधान का निर्माण किया जिसमें समाजवादी मूल्यों की स्थापना की गई और विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों को सामाजिक सुरक्षा की गारंटी प्रदान की गई। वर्ष 1956 में डॉ० बी० आर० अम्बेडकर ने हिंदू धर्म को त्याग बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया। इतिहास में यह हिंदू धर्म की सबसे बड़ी सांस्कृतिक आलोचना था। फिर उनकी मृत्यु के बाद वर्ष 1928 में रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना की गई जो पहली ऐसी पार्टी थी जिसका नेतृत्व दलितों के हाथ में था। सन् 60 के दशक में मराठी में दलित साहित्य का आविर्भाव जिनके द्वारा साहित्य सबके लिए की गैर–दलितों की गर्वोक्ति पर प्रश्नचिन्ह् खड़ा हुआ। संसद में हिंदू कोड बिल को प्रस्तुत करना इतिहास की पहली घटना है जो हिंदू समाज व्यवस्था को आधुनिक न्यायपरक मूल्यों के आधार पर संगठित करने की कोशिश की थी जिसमें महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्रदान कर उनके स्वाभिमान की रक्षा की गई थी। 'दलित पैथर' और 'बहुजन समाज पाटी' का अस्तित्व में आना आदि जैसी घटनाएं दलित आंदोलन की इतिहास की मील के पत्थर हैं। ये घटनाएं दलित आंदोलन के एक व्यवस्थित विचार दर्शन की ओर बढ़ने का ही मात्र संकेत नहीं देती, बल्कि दलितों के एक स्वतंत्र अस्तित्व के निर्माण की भूमिका भी तैयार करनी है। अम्बेडकरवाद का दर्शन मात्र दलित मुक्ति का दर्शन नहीं था वह इस व्यवस्था को पूरी तरह ट्रान्सफार्म करने का दर्शन था। इतने बड़े आंदोलन का गैर–दलित बुद्धिजीवितयों के चिंतन् एवम् लेखन पर क्या असर पड़ा है ? साहित्य को यह किस तरह प्रभावित किया है ?

स्वतंत्रता के बाद का हिंदी साहित्य अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं और विचारधाराओं से अत्यधिक रूप से प्रभावित रहा है। चाहे वह मार्क्सवाद हो या अस्तित्ववाद, मनोविज्ञानवाद हो या समाजवाद, पर वह अम्बेडकरवाद से बिल्कुल ही प्रभावित नहीं दिखता। गैर–दलित समाज का संवेदनशील तबका दलित आंदोलन की हलचलों से अपने आपको कोसों दूर रख रहे हैं। दलित लेखन के संदर्भ में गैर–दलितों की जो स्थिति स्वतंत्रता पूर्व थी, कमोवेश वही स्थिति आज भी है। अंतर सिफ इतना है कि आज दलितों पर लिखने वाले गैर–दलितों की संख्या अधिक है जबकि उस समय कम थी। दृष्टि में सिर्फ इतना फर्क आया है कि स्वतंत्रता के पूर्व दलित पात्र अपनी स्थितियों में विद्रोह कम करते थे, जबकि आज थोड़ा अधिक करते हैं। इस तरह आज का गैर–दलित लेखन स्वतंत्रता से पूर्व के गैर–दलित के दलित लेखन का विस्तार मात्र है। इससे अधिक कुछ नहीं। दलित आंदोलन और उसकी अंबेडकरवादी दृष्टि का उस पर कोई प्रभाव नहीं है। गैर–दलितों के लिए दलित आंदोलन मात्र खुद के प्रति उनके ध्यानाकर्षण का माध्यम था और कुछ नहीं। स्वतंत्रता आंदोलन के नायम महात्मागांधी थे। वे उस समय आंदोलन का नेतृत्व नहीं कर रहे थे, बल्कि तत्कालीन सवर्ण समाज के उन तबकों के चिंतन का भी नेतृत्व कर रहे थे जो अपने आपको उदारवादी और प्रगतिशील कहता था। इसलिए दलितों के प्रति गांधी जी का जो दृष्टिकोण था और उनकी समस्याओं के प्रति जो उनका ट्रीटमेंट था वह सामान्य रूप से तत्कालीन सवर्ण समाज के मुखर तबके का दृष्टिकोण था। जैसा कि आज सर्वविदित है कि तत्कालीन उदारवादी और प्रगतिशील सवर्णो का दलितों के प्रति जो दृष्टिकोण गांधी जी से होकर आ रहा था वह दलित जीवन के वायवीय और स्थूल पक्ष के आधार बना था। इस स्तर पर क्या राजनीतिस् और क्या समाजशास्त्री, क्या इतिहासकार और क्या साहित्यकार सभी का दृष्टिकोण एक समान था। दलितों के प्रति इस दृष्टिकोण से कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद भी नहीं बच पाए। दलितों के प्रति गैर–दलितों का यह दृष्टिकोण दलितों के खुद के चिंतन से भिन्न ही नहीं सर्वथा विपरीत था। उनके दृष्टिकोण में कहीं भी इन बातों का कि – दलितों के आंदोलन का दर्शन क्या था ? उसका उद्देश्य क्या था ? उसके अस्तित्व के आधार क्या थे ? उसकी ऐतिहासिकता क्या थी ? और उसके राजनैतिक और सामाजिक सरोकार क्या थे ? आदि का जिक्र नहीं मिलता। इससे वह वर्ग पूरी तरह अनभिज्ञ था। कमोवेश आज के गैर–दलित लेखकों और बुद्धिजीवियों का भी यही दृष्टिकोण है। इसलिए तत्कालीन साहित्यिक रचनाओं में उपरोक्त दृष्टिकोण की झलक है और कमोवेश आज की रचनाओं में भी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अम्बेडकरवादी चिंतन का प्रभाव इन रचनाओं पर न के बराबर है। हां, इतना जरूर कहा जा सकता है कि गैर–दलित लेखकों की रचनाएं दलितों के जीवन से संबंधित तो रही है, और

है। पर इन पर अम्बेडकर की विचारधारा का प्रभाव न था, और न है। अम्बेडकरवादी आंदोलन ने दलितों के जीवन के प्रति गैर–दलित लेखकों का मात्र ध्यानाकर्षण किया। इससे अधिक कुछ नहीं। इस संदर्भ में प्रसिद्ध दलित चिंतक कंवल भारती की टिप्पणी महत्वपूर्ण है। हालांकि उनकी यह टिप्पणी विशेष रूप से मुंशी प्रेमचंद के दलित लेखन पर है। लेकिन वह गैर–दलितों के दलित लेखन पर सामान्य रूप से लागू होती है। "महात्मा गांधी और डॉ० अम्बेडकर दोनों ही प्रेमचंद के समकालीन थे। पर, प्रेमचंद दलितोद्धार के मामले में महात्मा गाधी के अनुयायी थे, जो अस्पृश्यता को मिटाना चाहते थे। वह डॉ० अम्बेडकर के प्रति आदरभाव रखते थे, पर वर्ण व्यवस्था के उच्छेद के प्रश्न पर उनसे सहमत नहीं थे। डॉ० अम्बेडकर के दलित आंदोलन के भी समर्थक नहीं थे। उन्होंने दलितों के लिए पृथक राजनीतिक अधिकारों की, डॉ० अम्बेडकर की मांगों का विरोध किया था। वे इसे दो राष्ट्रों की मांग मानते थे। वह दलित मुक्ति के लिए सिर्फ इतना चाहते थे कि विद्यालयों में इनके लिए वजीफें हों और नौकरियां देने में थोड़ी रियायत हो। वह जमीदारों के हाथ में उनकी दशा सुधारने के उपदान मानते थे जो दलितों से बेगार बन्द करके तथा उन्हें घर बनाने के लिए कुछ जमीनें देकर उनकी कुछ कठिनाइयां दूर कर सकते थे, इसके आगे प्रेमचन्द की सोच दिखाई नहीं देती। डॉ० अम्बेडकर का दलित आंदोलन स्वतंत्रता, समता और भ्रातृत्व के सिद्धांत पर आधारित था, उसने दलितों को शिक्षा, संगठन और संघर्ष के सूत्र दिए थे। प्रेमचंद के साहित्य में इन सूत्रों का कोई समर्थन नहीं है।"

संदर्भ

1. दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद का साहित्य शाही पृष्ठ संख्या – 53।
2. दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद साहित्य, सदानन्द शाही, पृ० स० – 54।
3. दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद साहित्य सदानंद, पृ० सं० – 12, 13।